



राई-सरसों में संरक्षण खेती अपनाकर बढ़ाएं मुनाफा

राम लाल चौधरी, हरवीर सिंह, रामस्वरूप जाट, मोहन लाल दौतानियां और वासुदेव मीणा

॥ भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में अनाज फसलों के बाद तिलहनी फसलों का दूसरा सबसे बड़ा योगदान है। पिछले एक दशक में तिलहन क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता में क्रमशः 1.60, 6.87 तथा 3.63 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई है। इसके बावजूद, फसल उत्पादन बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा में खेती में संसाधनों का अत्यधिक, असंतुलित और अनुचित उपयोग किया गया है। इसका परिणाम संसाधनों के क्षरण, गुणवत्ता और उपलब्धता में गिरावट के रूप में सामने आया है। इसके साथ ही उत्पादन लागत बढ़ने से सकल लाभ में भी कमी देखी गई है। राई-सरसों की खेती में अधिक जुताई करना लाभांश घटने का एक प्रमुख कारण है, जो कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन, तापमान वृद्धि और वैश्विक जलवायु परिवर्तन में भी योगदान देता है। मृदा की गुणवत्ता और स्वास्थ्य में लगातार गिरावट भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती बन रही है। ऐसे परिदृश्य में संसाधन संरक्षण और लागत में कमी लाने वाली कृषि पद्धतियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। ऐसी स्थिति में संरक्षण खेती एक उपयुक्त एवं व्यावहारिक विकल्प के रूप में उभर रही है। ॥

संरक्षण खेती एक समग्र कृषि प्रणाली है, जिसमें मृदा की जुताई को न्यूनतम करना, फसल अवशेषों द्वारा मृदा को ढककर रखना तथा फसल विविधीकरण के माध्यम से मृदा, जल एवं पर्यावरण का संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन और ब्राजील के बाद भारत विश्व की चौथी सबसे बड़ी वानस्पतिक तेल अर्थव्यवस्था है।

भाकृअनुप-भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, भरतपुर-321303 (राजस्थान)

भारत सरकार के तृतीय अग्रिम अनुमान के अनुसार वर्ष 2024-25 में तिलहनों का कुल क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 30.26 मिलियन हैक्टर, 42.61 मिलियन टन और 1408 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रहे। हालांकि, बढ़ती जनसंख्या की मांग को पूरा करने के लिए घरेलू खाद्य तेल की उपलब्धता पर्याप्त नहीं है। परिणामस्वरूप, भारत न केवल विश्व में तिलहन उत्पादन में अग्रणी है, बल्कि खाद्य तेलों का सबसे बड़ा आयातक देश भी बन गया है। भारत हर वर्ष खाद्य तेल की कुल खपत का लगभग 50-60

प्रतिशत आयात करता है। वर्ष 2023-24 में खाद्य तेल का आयात 15.65 मिलियन टन रहा, जो वर्ष 2010-11 (7.24 मिलियन टन) की तुलना में 115.3 प्रतिशत अधिक है।

राई-सरसों रबी की प्रमुख तिलहनी फसलों में से एक है। वैश्विक स्तर पर भारत राई-सरसों उत्पादन में 13.76 प्रतिशत के योगदान के साथ चीन और कनाडा के बाद तीसरे स्थान पर है, जबकि क्षेत्रफल के आधार पर 20.37 प्रतिशत के योगदान के साथ कनाडा के बाद दूसरे स्थान पर है।

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में राई-सरसों फसलों का उत्पादन तिलहनी फसलों में विशेष महत्व रखता है। वर्ष 2024-25 के तृतीय अग्रिम अनुमान के अनुसार, तिलहनों के कुल क्षेत्रफल एवं उत्पादन में राई-सरसों का योगदान क्रमशः 28.6 प्रतिशत (8.63 मिलियन हैक्टर) और 31.8 प्रतिशत (12.61 मिलियन टन) रहेगा, तथा कुल खाद्य तेल उत्पादन में इसका योगदान लगभग 33.8 प्रतिशत रहेगा। इस प्रकार, राई-सरसों फसलें देश की खाद्य तेल आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

पिछले कई वर्षों में उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों के बावजूद परंपरागत खेती में संसाधनों का अत्यधिक, असंतुलित और अनुचित उपयोग देखा गया है। इसका परिणाम भूमि की उपजाऊ शक्ति और फसल गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की घटती मात्रा, भूजल स्तर में गिरावट, खेतों में खरपतवारों का बढ़ता प्रकोप, बिगड़ता मृदा स्वास्थ्य, मौसम की विषमताएं और उत्पादन अस्थिरता के रूप में सामने आया है। इसके साथ ही, संसाधनों के असंतुलित प्रयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में वृद्धि हुई है एवं किसानों की उत्पादन लागत बढ़ने के साथ उनकी आय घटती जा रही है।

ऐसे परिदृश्य में संसाधन संरक्षण और लागत में कमी लाने वाली कृषि प्रणालियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। संरक्षण खेती इस संदर्भ में एक व्यावहारिक विकल्प के रूप में उभर रही है। यह प्रणाली पोषक तत्वों, जल और ऊर्जा जैसे प्रमुख आदानों की बचत सुनिश्चित करती है तथा वैश्विक स्तर पर इसके सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं। अतः संरक्षण खेती के इन लाभों को राई-सरसों जैसी उच्च प्राथमिकता वाली फसलों में भी अपनाकर उत्पादन स्थिरता, संसाधन संरक्षण



बाजरा कटाई के बाद जीरो-टिल ड्रिल मशीन से सरसों की बुआई

और किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया जा सकता है।

संरक्षण खेती को सफल बनाने के लिए स्थान-विशिष्ट आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न नए-नए तरीकों को अपनाया जाता है। यह प्रणाली तीन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है:

न्यूनतम जुताई

लगातार जुताई से मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुण प्रभावित होते हैं, जिससे मृदा स्वास्थ्य बिगड़ता है, उर्वरता और उत्पादन क्षमता घटती है एवं मृदा क्षरण बढ़ता है। संरक्षण खेती में न्यूनतम जुताई अपनाने से मृदा स्वास्थ्य बेहतर रहता है। इसके साथ ही ईंधन और मानव श्रम की बचत भी होती है।

स्थायी फसल अवशेष आवरण

संरक्षण खेती में मृदा सतह का लगभग 30 प्रतिशत भाग फसल अवशेषों से ढका रहता है। यह आवरण वाष्पीकरण को कम करता है, सिंचाई की आवश्यकता को घटाता

चुनौतियां

- **कृषि यंत्रों की अनुपलब्धता:** जीरो-टिल ड्रिल मशीन, रेज्ड बेड प्लांटर और हैप्पी सीडर जैसी आवश्यक मशीनों की सीमित उपलब्धता।
- **मानसिकता में बाधा:** किसान परंपरागत अधिक जुताई को अधिक उपज का कारण मानते हैं।
- **लघु एवं सीमांत किसान:** छोटे खेतों के कारण संरक्षण खेती को अपनाने में कठिनाई।
- **यंत्रों का रखरखाव:** कृषि यंत्रों की नियमित जांच, परीक्षण और उचित रखरखाव की कमी।
- **तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी:** किसानों, प्रसार अधिकारियों और कृषि वैज्ञानिकों को उपयुक्त प्रशिक्षण एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव।
- **उच्च लागत:** संरक्षण खेती के लिए आवश्यक यंत्रों की अधिक कीमत।
- **प्रसार में उदासीनता:** राज्य कृषि विभाग की संरक्षण खेती के प्रसार में अनियमितता या कम सक्रियता।



सरसों की बुआई के बाद खेत में जीरो-टिल ड्रिल मशीन द्वारा तैयार आवरण

है और वर्षा, धूप तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों से मृदा की रक्षा करता है। फसल अवशेष मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने में सहायक होता है। इससे जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है और मृदा स्वास्थ्य मजबूत होता है।



रेज्ड बेड प्लांटर द्वारा सरसों की बुआई के बाद खेत में जमाव

टिकाऊ एवं लाभदायक फसल प्रणाली

संरक्षण खेती में लाभदायक फसलचक्र आवश्यक है। फसल अवशेष उत्तरवर्ती फसलों के लिए सतह आवरण और पशुओं के लिए चारा उपलब्ध करवाते हैं। फसल विविधीकरण से मृदा की उर्वराशक्ति बनी रहती है, पोषक तत्व और जल उपलब्धता बढ़ती है एवं कीट तथा रोगों का प्रकोप कम होता है।

संरक्षण खेती के सिद्धांतों को लागू करने के लिए विभिन्न संसाधन संरक्षण तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे-लेजर भूमि पाटा द्वारा भूसमतलीकरण, शून्य जुताई के लिए जीरो-टिल, रेज्ड बेड प्लांटर, हैप्पी सीडर, टर्बो सीडर जैसे उपकरणों का प्रयोग, सिंचाई प्रणालियों में बूंद-बूंद सिंचाई, फव्वारेदार और सूक्ष्म सिंचाई जैसी तकनीकों के माध्यम से संसाधनों का इष्टतम उपयोग और प्रबंधन संभव होता है। इससे मृदा, जल और पर्यावरण की गुणवत्ता बनी रहती है तथा कृषि उत्पादकता में स्थायित्व आता है।

राई-सरसों फसलों में

संरक्षण खेती अपनाने के लाभ

कम जुताई और ऊर्जा बचत

परंपरागत राई-सरसों खेती में लगभग 8-10 बार ट्रैक्टर द्वारा जुताई की जाती है। संरक्षण खेती में शून्य जुताई या न्यूनतम जुताई

की जाती है। जीरो टिल ड्रिल मशीन या रेज्ड बेड प्लांटर द्वारा बीज और उर्वरक को एक साथ अलग-अलग गहराई पर बोया जाता है, जिससे ईंधन (डीजल) और श्रम की बचत होती है। इससे किसान प्रति हैक्टर लगभग 10-12 हजार रुपये और ऊर्जा की बचत कर सकते हैं।

उत्पादकता और लाभ में वृद्धि

शून्य जुताई एवं फसल अवशेषों को सतह पर बनाए रखने से सरसों की पैदावार और शुद्ध लाभ में क्रमशः लगभग 15-20 प्रतिशत वृद्धि होती है।

जल संरक्षण और सूखे से सुरक्षा

मृदा सतह पर फसल अवशेषों के आवरण के कारण नमी बनी रहती है और वाष्पीकरण से हानि कम होती है। इससे सिंचाई जल की बचत होती है और फसल अल्पकालीन सूखे से सुरक्षित रहती है।

मृदा उत्पादकता और पोषक तत्व संरक्षण

संरक्षण खेती अपनाने से मृदा की उत्पादकता बढ़ती है। इसके साथ ही जल, ऊर्जा और मृदा की उर्वरता का संरक्षण भी होता है।

फसल विविधीकरण और रोग नियंत्रण

फसल विविधीकरण से मृदा स्वास्थ्य



संरक्षण खेती पद्धति के अंतर्गत लहलहाती सरसों की फसल



मक्का कटाई उपरांत खड़ी फसल अवशेषों में रेज्ड बेड प्लांटर द्वारा सरसों की बुआई

में सुधार होता है और मृदाक्षरण कम होता है। इसके अलावा कीट, रोग और खरपतवारों का प्रकोप भी घटता है।

जैविक गतिविधि और पोषक तत्वों में सुधार

संरक्षण खेती में मृदा में जैविक कार्बन, फॉस्फोरस और पोटेसियम की उपलब्धता बढ़ती है। इसके साथ ही लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संख्या और एंजाइम गतिविधियां (सेल्यूलोज, क्षारीय फॉस्फेटेज, डिहाइड्रोजेनेज, यूरेस फ्लेवेसिन, डायसेंटेटे हाइड्रोलाइन आदि) भी पारंपरिक खेती की तुलना में अधिक होती हैं।

समय, श्रम और गुणवत्ता में लाभ

संरक्षण खेती में समय, धन और श्रम की बचत होती है। इसके साथ ही उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार होता है।

पर्यावरण संरक्षण

पारंपरिक खेती की तुलना में संरक्षण खेती में ग्रीनहाउस गैसों (कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड) का उत्सर्जन कम होता है। इससे तापमान वृद्धि और वैश्विक जलवायु परिवर्तन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

राई-सरसों भारत की प्रमुख तिलहनी फसल है, जिसका अर्थव्यवस्था में विशेष योगदान है। परंपरागत अधिक जुताई आधारित खेती से उत्पादन लागत बढ़ती है, मृदा स्वास्थ्य बिगड़ता है और पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ता है। ऐसे में संरक्षण खेती, जिसमें शून्य जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन और संसाधन संरक्षण जैसी तकनीकें अपनाई जाती हैं, टिकाऊ उत्पादन के साथ पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करती है। इससे उत्पादन लागत में 10-12 हजार रुपये प्रति हैक्टर की बचत, पैदावार और शुद्ध लाभ में क्रमशः 15-20 प्रतिशत की वृद्धि, मृदा स्वास्थ्य में सुधार और जल, पोषक तत्व तथा ऊर्जा की बचत होती है। साथ ही, संरक्षण खेती ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करके जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी मदद करती है। किसानों तक इस पद्धति को पहुंचाने के लिए प्रभावी प्रचार-प्रसार और सरकारी अनुदान आवश्यक हैं।

संरक्षण खेती

संरक्षण खेती एक बेहद लाभकारी कृषि पद्धति है। इसमें न्यूनतम जुताई, फसल अवशेषों का सही प्रबंधन और फसल विविधीकरण के माध्यम से मृदा, जल और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया जाता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य उत्पादन की निरंतरता बनाए रखना और संसाधनों का स्थायी उपयोग सुनिश्चित करना है। संरक्षण खेती मृदा की ऊपरी और निचली सतह में प्राकृतिक जैविक गतिविधियों को बढ़ाने पर आधारित है। इससे न केवल फसल की पैदावार अधिकतम बनी रहती है, बल्कि भूमि की उर्वरता और संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहती है। इस पद्धति के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण सुनिश्चित किया जा सकता है। इसमें उपलब्ध संसाधनों का इष्टतम उपयोग किया जाता है। इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण, कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, पौष्टिकता, उत्पादकता और संसाधन उपयोग दक्षता को बढ़ाया जाता है। इसके परिणामस्वरूप भूमि का स्वास्थ्य बेहतर रहता है, पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है और जलवायु परिवर्तन, भुखमरी व कुपोषण जैसी गंभीर समस्याओं से निपटने में सहायता मिलती है।